International Educational Applied Research Journal
A Multi-Disciplinary Research Journal
E-ISSN No: 2456-6713

महात्मा बुद्ध के आर्थिक विचार

डॉ. गीता अवस्थी
सहायक प्राध्यापक,इतिहास विभाग,जेसी.कन्या महाविद्यालय,बिरलानगर, ग्वालियर (म.प्र.)

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.10722331

शोध सारांश :

महात्मा बुद्ध ने भारतीय समाज के लोगों के आर्थिक जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला हैं। वे समाज के विकास के लिये कृषि के विकास तथा उद्योगों के विकास पर के महत्व को माना हैं। महात्मा बुद्ध महिलाओं को शिल्प कला में दक्ष करने के पक्ष में थे। वे मानते थे कि प्रत्येक मनुष्य को कोई न कोई शिल्प अवश्य आना चाहिए। महात्मा बुद्ध कृषि के कारण ही पशु हत्या के विरुद्ध थे। उनके अनुसार कृषि में प्रयोग किये जाने वाले पशुओं का वध नही करना चाहिये। महात्मा बुद्ध ने व्यापर के विकास पर भी बल दिया। अनेक व्यापारी नदके अनुयायी थे। वे व्यापार को राष्ट्र की उन्नति के लिये आवश्यक मानते थे।

सार :

महात्मा बुद्ध ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों के साथ–साथ समाज के आर्थिक विकास के विषय में भी अपने विचार दिये हैं। महात्मा बुद्ध का आर्थिक दृष्टिकोण भी बड़ा ही रोचक है, उन्होंने आर्थिक विकास के सन्दर्भ में कृषि, पशुपालन और व्यापार को अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बताया है, इस कारण से वैदिक काल में व्याप्त आडम्बर जैसे– पशुपलि की अवहेलना की क्योकि इसके कारण समाज को आर्थिक हानि के साथ–साथ हिंसा भी होती थी जो कि महात्मा बुद्ध के आर्दशों के विरुद्ध था। उनका यह मानना था कि कृषि कार्य के लिए पशुओ की आवश्यकता होती है, यदि इसी तरह से पशुओं की बलि दिया जाता रहेगा, तो धीरे–धीरे पशु लोप होते जायेंगें और कृषि कार्य में बाधा उत्पन्न होगी। उत्तर वैदिक काल में लोहे की खोज ने कृषि के क्षेत्र में विकास किया। लोहे के बनाये गये उपकरणों के प्रयोग से जंगलों की सफाई करके कृषि कार्य एवं बड़ी–बड़ी बस्तियों की स्थापना सम्भव हुई। लोहे के बने हल के फाल के द्वारा खेतों की जुताई के लिए अत्यधिक मात्रा में बैलों की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिए महात्मा बुद्ध बलि का विरोध किया तथा पशुपालन पर जोर किया। असंख्य यज्ञों में बैलों, बछड़ों और साँड़ों के लगातार मारे जाते रहने से पशुधन में कमी आई तथा यह कृषि में बाधक सिद्ध हुआ। मगध के दक्षिणी एवं पूर्वी छोरों पर बसे कबायली लोग भी पशुओं को मार–मार कर खा जाते थे, लेकिन यदि इस कृषि मूलक अर्थव्यवस्था को चलाना था, तो इस पशुवध को रोकना आवश्यक था। अतः महात्मा बुद्ध ने अंहिसा का उपदेश दिया, जिससे की यज्ञों में होने वाले पशु बलि को रोका जा सके।

International Educational Applied Research Journal
A Multi-Disciplinary Research Journal
E-ISSN No: 2456-6713

महात्मा बुद्ध के कृषि पर विचार :

प्राचीन काल से ही मानव का आर्थिक आधार कृषि कार्य रहा है और वर्तमान समय में भी कृषि मुख्य व्यवसाय है। भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँव में निवास करती है और वे लोग कृषि पर निर्भर होते हैं। वर्तमान समय की भाँति प्राचीन काल में भी कृषि कार्य करने वाले लोगों को कृषक कहा जाता था।[1] कृषि प्रत्येक वर्ण के लोग करते थे, इतना ही नहीं ब्राह्मण वर्ण के लोग भी कृषि कार्य करते थे।

बौद्ध काल में कृषि भूमि छोटे–छोटे टुकड़ों में बँटी हुई थी, जिस पर अलग–अलग परिवार के लोग खेती करते थे। महात्मा बुद्ध ने किसानों के लिये राजाओं को यह निर्देश दिया कि राजा का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि उनके जनपद में जो लोग कृषि कार्य करना चाहते हों, उन्हें वह (बीज–भात) बीज–भत दे।[2] तत्कालीन समय में कुछ इस प्रकार की भी भूमि होती थी, जिस पर सम्पूर्ण गाँव का अधिकार होता था, जिसे ग्राम खेत कहा जाता था, जिसके सम्बन्ध में ग्रामिणी का विशेष अधिकार और कर्त्तव्य होता था। ये सामूहिक खेत के छोटे–छोटे टुकड़े बँटे होते थे। यह दृश्य महात्मा बुद्ध को बड़ा ही सुहावना लगता था और इसी के प्रेरणा स्वरूप उन्हें भिक्षुओं के चीवर बनाने की कल्पना मिली थी। महात्मा बुद्ध का यह कथन जो अपने प्रिय शिष्य आनन्द को कहा था– "देखते हो आनन्द! मगध के इन मेड़ बन्धे, कतार बन्धे, मर्यादा बन्धे, चौमेड़ बन्धे खेतों को क्या आनन्द भिक्षुओं के लिए ऐसे चीवर बना सकते हो''?[3]

इस सूक्त से यह निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि– महात्मा बुद्ध का ऐसा दृष्टिकोण था कि वे आर्थिक विकास के लिए कृषि कार्य को अत्यन्त महत्त्व दिया करते थे। उनका ऐसा मानना था कि कृषि के द्वारा समाज का आर्थिक विकास हो सकता है। यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म जैन धर्म की भाँति अति अहिंसावादी नहीं था। जैन धर्म के लोग कृषि कार्य ना करने की बात करते है, जबकि बुद्ध इस मत से समहत नहीं थे।

बौद्ध काल में भी कृषि उपकरणों का व्यापक रूप से प्रयोग होता था। उस समय भी हलों में बैल जोड़कर खेत जोते जाते थे, जैसे आज के समय। सीहचम्म जातक तथा अन्य कई जातकों में महात्मा बुद्ध के द्वारा कृषि उपकरणों के द्वारा कृषि कार्य करने का सुझाव देने की जानकारी प्राप्त होती है। उन्होंने कहा हलों से खेत को जोतकर, धरती में बीज बोना चाहिए, जिससे अधिक अन्न का उत्पादन हो सके। इतना ही नहीं महात्मा बुद्ध हल जोतने के कार्य को राष्ट्रीय महत्व का कार्य बताया है। यही कारण था कि शाक्य गणराज्य के लोग फसल बोने के समय "वप्पमंगलम्" नामक एक उत्सव मानते थे, जिसमें अमात्यों के साथ–साथ राजा भी हल चलाते थे।[4]

महात्मा बुद्ध का यह विचार था कि कृषक किसी भी वर्ण या जाति का हो सकता है, क्योंकि अन्न की आवश्यकता प्रत्येक मनुष्य को होती है, किसी जाति विशेष को नहीं। बौद्व ग्रन्थों में लिखा गया है कि तत्कालीन समय में ब्राह्मण भी कृषि कार्य करते थे, जिनके पास सैकड़ों हल और बैल होते थे। यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि ऐसे ब्राह्मण अपने अतिरिक्त अन्य बहुत से लोगों को कृषि कार्य हेतु नियुक्त करते थे। श्रमिकों को कार्य के बदले मजदूरी प्राप्त होती थी। तत्कालीन समय में कृषक सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर रहते थे। कुँआ और नदियों के अतिरिक्त सिंचाई के लिए पुष्करिणियों तथा जलाशयों का भी प्रयोग किया

International Educational Applied Research Journal
A Multi-Disciplinary Research Journal
E-ISSN No: 2456-6713

जाता था। इन प्राकृतिक संसाधनों के माध्यम से तत्कालीन समय में कृषि कार्य होता था। इन संसाधनों का किस प्रकार से प्रयोग करके अच्छी फसल उगाई जा सकती है, इस प्रसंग मे स्वयं महात्मा बुद्ध कृषि कार्य के प्रति तटस्थ रहते थे। वे कृषकों को वैज्ञानिक ढंग से कृषि कार्य करने की सलाह देते थे।[5]

पशुपालन के प्रति महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण:

बौद्ध काल में अनेक प्रकार के पशु अनेक कार्यों के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। पशुओ का उपयोग केवल कृषि कार्य में ही नहीं, वरन् बोझा ढोने में भी प्रयोग किया जाता था। गाड़ियों में ऊँट, बैल, तथा गदहों का उपयोग करके वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जाता था। तत्कालीन समय में आर्थिक दृष्टिकोण में पशुओं का चमड़ा भी महत्त्वपूर्ण था, इसके लिए लोग सिंह, बाघ और हाथियों को भी मार देते थे। लोग जानवरों के बालों को भी निकालने के लिए मार देते थे।[6] बैलों का प्रयोग खेतों की जुताई तथा बैलगाड़ी के लिए किया जाता था। गाय, भैंस और बकरी को लोग दूध के लिए पालते थे। इन सभी पशुओं का बौद्धकाल में आज की भाँति अत्यन्त उपयोगिता थी।[7] इन पशुओं के द्वारा लोगों का कार्य बड़ी की आसानी से हो जाया करता था।

महात्मा बुद्ध पशुपालन को आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य बताते हैं। वे पशुओं को बड़ा ही महत्त्व देते थे। महात्मा बुद्ध ने गायों को माता, पिता, भाई और बन्धु–बान्धव की तरह परम् मित्र और अन्नदा, वलदा, वर्णदा तथा सुखदा बताया है।[8] इन पशुओं के माध्यम से लोगों को दूध, दही तथा घी प्राप्त होता था। बौद्धकालीन भारत में पशुपालन के कारण ही दूध एवं घी की कमी भी कभी नहीं रही। लोग भेड़–बकरियों को भी पालते थे, इससे उनका दूध के अतिरिक्त ऊन सम्बन्धी गृह–शिल्प चलता था और बहुमूल्य कम्बल आदि बनाये जाते थे।[9]

बौद्धकाल मे लोग शाकाहारी तथा माँसाहारी दोनों प्रकार के भोजन ग्रहण करते थे। माँसाहारी भोजन के लिए पशुपालन की आवश्यकता होती है, क्योंकि बिना पशुपालन के भोजन के लिए माँस की प्राप्ति कहाँ से होती। स्वयं महात्मा बुद्ध भी लोगों को शाकाहारी एवं माँसाहारी दोनों प्रकार के भोजन करने की बात करते हैं।[10] पाषाणकाल में लोग माँस खाने के लिए जंगलों में जानवरों का शिकार करते थे। अब लोग पशुपालन करने लगे थे। महात्मा बुद्ध स्वयं माँसाहारी थे, जिसका उल्लेख मुनिक जातक में सुअर तथा दीर्घनिकाय के महापरिनिर्वाण सुत्त में सुक्करमद्दव खाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[11]

लोहे की खोज से भारत में नई कृषि मूलक अर्थव्यवस्था का विस्तार हुआ। लोहे के प्रयोग से जंगलों की सफाई किया गया, जिससे कृषि का विस्तार हुआ। कृषि से बड़ी–बड़ी बस्तियों की स्थापना हुई। लोहे के फाल वाले हलों पर आधारित कृषि मूलक अर्थव्यवस्था में बैलों का इस्तेमाल जरूरी था। इसलिए पशुपालन की अत्यन्त ही आवश्यकता पड़ने लगी। दूसरी ओर वैदिक कर्मकाण्डों, यज्ञों में अन्धाधुन्ध पशुओं की बलि दिया जाने लगा। महात्मा बुद्ध ने सभी लाभदायक पशुओं के बली दिये जाने का विरोध किया।

International Educational Applied Research Journal
A Multi-Disciplinary Research Journal
E-ISSN No: 2456-6713

व्यापार के प्रति महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण:

भारतवर्ष में पूर्व बुद्ध काल से ही व्यापार प्रचलन में रहा हैं। व्यापार आर्थिक दृष्टिकोण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन होता है। व्यापार के कारण ही भारतवर्ष में नगरों का विकास हुआ है। नगरों के विकास होने से व्यापार का विस्तार हुआ है। जातक कथाओं से यह विदित होता है कि व्यापार के अनुरूप ही अनेक वीथियों का निर्माण किया गया था। व्यापारों से ही बाजार का निर्माण हुआ है। बाजारों में कपड़े, तेल, अन्न, शाक, रत्न, सोना, चाँदी, आभूषण आदि का क्रय–विक्रय होता था।[12] तत्कालीन समय में माँस, शराब, वस्त्र तथा दासों का भी क्रय–विक्रय होता था, किन्तु इस क्रय–विक्रय के लिए महात्मा बुद्ध विरोध करते थे। उनका कहना था कि उपरोक्त वस्तुओं का क्रय–विक्रय नहीं किया जाना चाहिए। महात्मा बुद्ध ने यह कहा कि सभ्य मनुष्य को ऐसे व्यापार से दूर रहना चाहिए। खाद्य सामाग्री और सब्जियाँ नगर में विक्रय के लिए लोग लाते थे। जहाँ पर लोग सब्जियों को खरीदते थे। सुरापाण, सूनागार तथा वानागार आदि नगर के द्वार के निकट ही होते थे।[13]

नगरों में सड़क के दोनों किनारों पर दुकानें हुआ करती थीं, जिससे नगरवासी विक्रय की वस्तुएँ सजाकर रखते थे। तत्कालीन समय का बाजार आज के समय के अनुसार काफी मिलता–जुलता था, जिस प्रकार आज के समय में लोग सड़कों के किनारे दुकानों को सजाकर रखते हैं, उसी प्रकार से बौद्धकालीन बाजार भी हुआ करते थे। किन्तु कुछ व्यापारी जो सड़कों के किनारे दुकान नहीं लगाते थे, वे नगर के भीतर घूम–घूमकर फेरी लगाकर अपने वस्तुओं को बेचा करते थे।[14] महात्मा बुद्ध इन व्यापारियों के प्रति भी अपना दृष्टिकोण बताते हैं कि व्यापार हमारे देश की अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है तथा व्यापारी वर्ग भी संघ में प्रवेश ले सकता है। तत्कालीन समय में व्यापार लगभग गहपति (गृहपति–वैश्य) के हाथों में होता था, जिनके पास अपार सम्पत्ति होती थी। उस समय वाराणसी, चम्पा, तक्षशिला, राजगृह, कौशाम्बी, श्रावस्ती, मिथिला तथा भद्रवती में अनेक धनी सेठ निवास करते थे, जिनका समाज में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। इस प्रकार के लोग जनपदों में भी रहा करते थे, जिन्हें जनपद–सेट्ठि कहा जाता था।[15]

बुद्धकालीन भारत में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के व्यापार हुआ करते थे, बौद्ध साहित्यों के माध्यम से यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि अनाथपिण्डक ने महात्मा बुद्ध को घोषिता राम विहार खरीद कर दान में प्रदान किया था। इन साक्ष्यों के द्वारा यह कहा जा सकता है कि– महात्मा बुद्ध का तत्कालीन समाज पर गहरा प्रभाव था। जनसामान्य के साथ–साथ बड़े–बड़े व्यापारी भी महात्मा बुद्ध का आदर सम्मान करते थे। वे भी बौद्ध संघों में बुद्ध की शिक्षाओं का अनुकरण करते थे तथा महात्मा बुद्ध भी व्यापारियों के प्रति भी उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे। वे भी व्यापारियों का सम्मान किया करते थे।

महात्मा बुद्ध ऐसा मानते थे कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए अर्थव्यवस्था को मजबूत होना अति आवश्यक होता है। इसलिए उन्होंने अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने हेतु कृषि के साथ व्यापार पर भी जोर दिया करते थे। उन्होंने अपने संघ में व्यापारियों को भी आदर और सम्मान के साथ आने का निमंत्रण देते थे।[16] व्यापार के प्रति महात्मा बुद्ध यह भी कहते थे कि व्यापार का विस्तार अपने राष्ट्र भारत में ही नहीं, वरन् समस्त संसार में होना चाहिए, क्योंकि व्यापार के साथ हमारी शिक्षाओं का भी प्रचार–प्रसार विदेशो में होगा। भगवान बुद्ध का ऐसा मानना था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अनेक संस्कृतियों, शिक्षा तथा

International Educational Applied Research Journal
A Multi-Disciplinary Research Journal
E-ISSN No: 2456-6713

साहित्य का भी प्रसार भारत देश में होगा। संस्कृतियों के आदान–प्रदान के द्वारा हम अपनी तुलना विदेश की संस्कृतियों से करके वहाँ की संस्कृतियों से कुछ न कुछ ग्रहण कर सकते हैं। यह भी विकास का एक साधन होता है। तत्कलीन समय में व्यापार से ही अनेक नगरों का उदय हुआ था। मार्गों की भी खोज हुई है। जिन मार्गों के द्वारा स्वयं महात्मा बुद्ध अपनी शिक्षाओं का प्रचार–प्रसार हेतु अनेक स्थलों का भ्रमण किया करते थे, इन्हीं भ्रमण के दौरान ही तत्कालीन समय का बहुत ही प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डक से महात्मा बुद्ध की मुलाकात हुई थी, जिससे महात्मा बुद्ध ने व्यापार के सम्बन्ध में अनेक बातें भी की थी। ऐसे व्यापारियों के प्रति भी महात्मा बुद्ध का बड़ा ही उदार दृष्टिकोण था। इन तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध व्यापार और व्यापारियों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते हुए व्यापार को महत्त्व देते थे। महात्मा बुद्ध व्यापारियों को यह भी कहा करते थे कि उन वस्तुओं का व्यापार नहीं करना चाहिए, जो देश और समाज के लिए हानिकारक होती हैं।[17]

औद्योगों पर महात्मा बुद्ध के विचार:

बुद्ध कालिन भारत में अनेक प्रकार के शिल्प औद्योग प्रचलित थे। लोग शिल्पकारी को बड़े ही आदर की दृष्टि से देखते थे। एक ओर शिल्पकारी कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर आधारित था, तो दूसरी ओर कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए ग्रामीण जीवन को आत्मनिर्भर बनाने वाला भी था। बुद्धकालीन भारत में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि शिल्पकारी का बड़ा ही आदर होता था। शिल्पकारी का समाज में अत्यन्त आवश्यकता थी। राजकुमारी को भी शिल्पकारी की जानकारी होना अतिआवश्यक था। स्वयं महात्मा बुद्ध भी शिल्पकारी के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रकट करते है। बौद्ध साहित्यों से यह उल्लेख प्राप्त होता है कि जब तक राजकुमार सिद्धार्थ ने अपनी दक्षता का पूरा परिचय नहीं दिया था, तब तक सुप्रबुद्ध शाक्य ने अपनी पुत्री भद्राकत्यायनी का विवाह उनसे करने को तैयार नहीं हुये थे।[18]

पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी शिल्पकारी सीखना अनिवार्य था। महात्मा बुद्ध ने विवाह योग्य कन्याओं को उपदेश देते हुए कहा था कि उनका विवाह जिस घर में हो, वहाँ कपास या ऊन के गृह शिल्प चलते हों, उनमें उन्हें पूरी दक्षता और कुशलता प्राप्त करनी चाहिए।[19] महात्मा बुद्ध भी शिल्पकारी के प्रति बहुत रुचिकर थे। वे ऐसा मानते थे कि यदि व्यक्ति के अन्दर कोई कला होगी, तो वह उस कला का उपयोग करके कोई ना कोई रोजगार कर सकता है, वह बेरोजगार नहीं होगा। वे महिलाओं को भी रोजगारपरक बनाने का सुझाव देते हैं। वर्तमान समय में भी भारत सरकार के द्वारा यह लगातार प्रयास किया जा रहा कि, भारत के युवाओं को रोजगारपरक शिक्षा की व्यवस्था किया जाय। इस बात से यह भी स्पष्ट होता है कि महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण वर्तमान में भी बहुत ही प्रासंगिक है। महात्मा बुद्ध के इस विचार का तत्कालीन समय में भी बहुत ही गहरा पड़ा था, उनकी माता महाप्रजापति गौतमी ने भी शिल्पकारी को सीखा था और सीखकर अपने हाथों से कताई बुनाई करके एक धुस्से के जोड़े को महात्मा बुद्ध को अर्पित किया था और महात्मा बुद्ध ने उसे सहर्ष स्वीकार किया था।[20]

महात्मा बुद्ध अनेक प्रकार के शिल्प की सराहना करते थे। उनका ऐसा विचार था कि शिल्पकारी एक कला होती है, इसे प्रत्येक व्यक्ति को सीखना चाहिए, वह कोई भी शिल्पकारी हो, क्या ंकि शिल्पकारी के द्वारा मनुष्य अपने रोजगार को प्राप्त कर जीविका चला सकता है।

International Educational Applied Research Journal
A Multi-Disciplinary Research Journal
E-ISSN No: 2456-6713

बुद्धकालीन भारत मे कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण वर्ग शिल्प बुनकरों (तन्तुवाय) का था। ये लोग वस्त्र को बुनने, कातने आदि का कार्य करते थे। बुद्धकालीन भारत में सूक्ष्मवस्त्र भी बनाये जाते थे, इसका भी उदाहरण प्राप्त होता है।[21] इस समय रंग–बिरंगे एवं बहुमूल्य रत्न से जुड़े हुए वस्त्रों का भी निर्माण किया जाता था। इस समय मोटे वस्त्र और महीन (पतले) वस्त्र दोनों का निर्माण किया जाता था। मोटे वस्त्रों को समाज के निर्धन लोग और महीन वस्त्र, जिसमें मणि (रत्न) जड़े होते थे, वे अमीर लोग पहनते थे। तत्कालीन समय में कपड़े सीने वाले दर्जी भी होते थे, जिन्हें तुण्णकारा कहा जाता था।[22] सिलाई की कला भी बुद्धकाल में लोगों को ज्ञात थी, जिसका उल्लेख दीर्घनिकाय के कस्सप सिंहनाद सुत्त से प्राप्त होता है। वस्त्रों पर रंगाई करने का भी साक्ष्य प्राप्त होता है, रंगाई करने का कार्य रजकार (धोबी) ही करते थे। रंगरेजो या कुशल चित्रकारों के द्वारा दीवालों पर स्त्री और पुरुष के सुन्दर चित्र बनाये जाने का साक्ष्य प्राप्त होता है।[23]

बुद्धकालीन भारत में एक वर्ग चर्मकारों का भी था, जो कि चमड़े का सामान बनाते थे। हाथी दाँत के भी अनेक वस्तुएँ बनाये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है, इन्हें दन्तकाश कहा जाता था। धातुओं का भी कार्य तत्कालीन समय में होता था, जिन्हें कम्भार (कर्मार) कहा जाता था। लोहे का कार्य करने वाले को लोहकार, सोने का कार्य करने वाले को सुवण्णकार, सोण्णकर या मणिकार कहा जाता था। अनेक प्रकार के आभूषण बनाये जाने का भी साक्ष्य प्राप्त होता है। जातक ग्रन्थों में भी अनेक प्रकार के आभूषण का वर्णन प्राप्त होता है।[24] लोहे का कार्य करने वाले लोग कृषि उपकरण को बनाते थे एवं साथ–साथ भाला, तलवार और घरेलू बर्तनों को भी बनाते थे। लोहार, लोहे को गलाकर तौलकर एवं मापकर उपकरण का निर्माण करते थे। तत्कालीन समय में कारीगरी बहुत ही उच्च कोटि की थी, कारीगर वीणा के तार (तन्ति) को भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ बनाते थे। वीणा बनाने वाले शिल्पकारों को स्वयं महात्मा बुद्ध ने बहुत ही प्रसंशा किया करते थे, जिसका उल्लेख जातक ग्रन्थों में किया गया है।[25]

बौद्ध साहित्य के माध्यम से यह जानकारी प्राप्त होती है कि महात्मा बुद्ध शिल्पकारी का बड़ा ही आदर करते थे। वे ऐसा मानते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई शिल्पकारी सीख लेनी चाहिए, जिससे वह अपनी जीविका चला सके। वे शिल्पकारों को भी संघ में आने के लिए कहा करते थे। महात्मा बुद्ध यह कहा करते थे कि मनुष्य को अपनी शिल्प या कला के द्वारा जीविका का निवर्हन करें, चाहे जो भी शिल्पकारी हो, किन्तु मनुष्य को कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चहिए, जो समाज के लिए हानिकारक हो, जिससे समाज को नुकसान हो।

अन्त में कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध समाज के विकास के लिये आर्थिक उन्नति को अति आवश्यक मानते थे। वे कृषि में प्रयोग किये जाने वाले पशुओं की हत्या के विरुद्ध थे। महात्मा बुद्ध ने कृषि, व्यापार तथा शिल्प के विकास के लिये अपने उपदेशों में कहा। वे समाजमें प्रत्येक व्यक्ति को शिल्पकला का ज्ञान प्राप्त करने की सलाह देते थे। वे स्वयं भी शिल्पकरी जानते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अवदान0 जिल्द 1/282/11, 1/293/9

International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

2. महावस्तु जिल्द 3/50/14
3. विनय पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 55
4. जातक–1, पृष्ठ 75
5. जातक–2, 139, 3.129, 257, 326, 4.50, 320, 5.212
6. महावस्तु जिल्द 2/70/61
7. दिब्यावदान 416/9
8. दिब्यावदान 416/9
9. दिब्यावदान 61/4
10. पाचित्तिय पालि, पृष्ठ 117, 119, 121, 12
11. मुनिक जातक, पृष्ठ 257
12. जातक–1, पृष्ठ 320
13. जातक 1.361., 1.442, 2.179
14. जातक 1.111, 305, 2.44, 3.21, 283
15. विनय पिटक, (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 199, 204, 261,
16. जातक–2, पृष्ठ 76
17. जातक 1, अवदान जिल्द 142/27–30
18. जातक–1, पृष्ठ 76
19. दि लीविंग थाट्स आफ, गौतम बुद्ध आन्नद कुमार स्वामी तथा आई0 बी0 हार्नर, पृष्ठ 123
20. बुद्धचर्या पपंच सूदनी, पृष्ठ 71
21. दीर्घ निकाय, (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ 128, 139, 132, 310
22. दीर्घनिकाय (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ 210, 265
23. अंगुत्तर निकाय, भाग–3, पृष्ठ 37, 38
24. जातक 4, पृष्ठ 233, 385
25. जातक–1, पृष्ठ 66